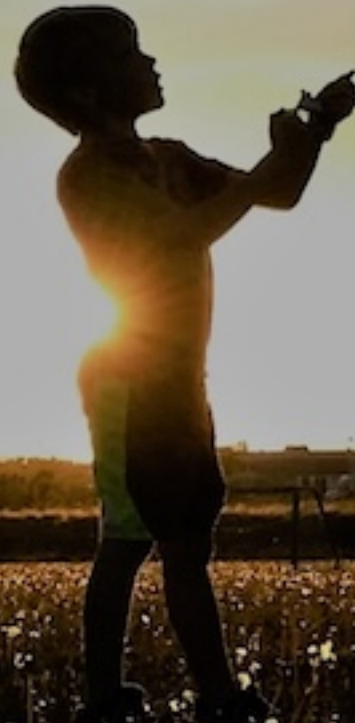


मनुष्य का परम धर्म



ॐ
प्रमचदं

मनुष्य का परम धर्म

प्रेमचंद



मनुष्य का परम धर्म

होली का दिन है। लड्डू के भक्त और रसगुल्ले के प्रेमी पंडित मोटेराम शास्त्री अपने आँगन में एक टूटी खाट पर सिर झुकाये, चिंता और शोक की मूर्ति बने बैठे हैं। उनकी सहधर्मिणी उनके निकट बैठी हुई उनकी ओर सच्ची सहवेदना की दृष्टि से ताक रही है और अपनी मृदुवाणी से पति की चिंताग्नि को शांत करने की चेष्टाकर रही है।

पंडितजी बहुत देर तक चिंता में डूबे रहने के पश्चात् उदासीन भाव से बोले- नसीबा ससुरा ना जाने कहाँ जाकर सो गया। होली के दिन भी न जागा !

पंडिताइन- दिन ही बुरे आ गये हैं। इहाँ तो जौन ते तुम्हारा हुकुम पावा ओही घड़ी ते साँझ-सबेरे दोनों जून सूरजनरायन से ही बरदान माँगा करिहैं कि कहीं से बुलौवा आवै, सैकड़न दिया तुलसी माई का चढ़ावा, मुदा सब सोय गये। गाढ़ परे कोऊ काम नाही आवत है।

मोटेराम- कुछ नहीं, ये देवी-देवता सब नाम के हैं। हमारे बखत पर काम आवें तब हम जानें कि कोई देवी-देवता। सेंट-मेंत में मालपुआ और हलुवा खानेवाले तो बहुत हैं।

पंडिताइन- का सहर-भर माँ अब कोई भलमनई नाही रहा ? सब मरि गये ?

मोटेराम- सब मर गये, बल्कि सड़ गये। दस-पाँच हैं तो साल-भर में दो-एक बार जीते हैं। वह भी बहुत हिम्मत की तो रुपये की तीन सेर मिठाई खिला दी। मेरा बस चलता तो इन सबों को सीधे कालेपानी भिजवा देता, यह सब इसी अरियासमाज की करनी है।

पंडिताइन- तुमहूँ तो घर माँ बैठे रहत हो। अब ई जमाने में कोई ऐसन दानी नाही है कि घर बैठे नेवता भेज देय। कभूँ-कभूँ जुबान लड़ा दिया करौ।